मनु की दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र

डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल

राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति

[मनुस्मृति-विषयक विभिन्न बिन्दुओं की
विभिन्न विद्वानों द्वारा तर्क-प्रमाणयुक्त समीक्षा]

लेखक एवं संकलन-सम्पादक

डॉ० सुरेन्द्रकुमार

आचार्य, एम.ए. संस्कृत-हिन्दी

(मनुस्मृति भाष्यकार एवं समीक्षक)

प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा)

© **सर्वाधिकार सुरक्षित**

ISBN 978-81-7077-125-0

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली–110 006
दूरभाष : 23977216, 65360255
e-mail : ajayarya@vsnl.com
Website : www.vedicbooks.com

वैदिक–ज्ञान–प्रकाश का गरिमापूर्ण 84वाँ वर्ष (1925–2009)

संस्करण : 2009

मूल्य : 150.00 रुपये

मुद्रक : नवशक्ति प्रिंटर्स, दिल्ली–110 032

RAJRISHI MANU AUR UNKI MANUSMRITI *by* Dr. Surendra Kumar

सम्पादकीय

'राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति' शीर्षक यह मुक्ताहार पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे पर्याप्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके तीन कारण हैं—एक, इस विषय के विशेषज्ञ अनेक वैदिक विद्वानों के लेख इसमें ऐसे संकलित हैं जैसे किसी हार में मोतियाँ पिरोई होती हैं। उन विद्वानों के मनु और मनुस्मृति-सम्बन्धी चिन्तन से पाठक लाभान्वित हो सकेंगे। दूसरा, यह पुस्तक मनु और मनुस्मृति-विषयक भ्रान्तियों को दूर करने में सहायक सिद्ध होगी तथा उन भ्रान्तियों के विस्तार को रोकेगी। तीसरा, एक ही स्थान पर, एक विषय पर, अनेक विचारकों के विचार एकत्र मिलना कठिन होता है। सबको सब पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पातीं, अतः अध्ययन-मनन में पाठकों को सुविधा-लाभ होगा।

सन् 1996 (विक्रमी सम्वत् 2053) और उसके कुछ पूर्व वर्षों में कुछ राजनीतिक दलों ने मनु-मनुस्मृति को अपनी स्वार्थपूर्ति का मुद्दा बनाकर 'मनुवाद' के नाम पर खूब विषवमन किया और भारतीय समाज में विघटन के बीज बोने शुरू कर दिये। आर्यसमाज जैसा राष्ट्रभक्त संगठन इस राष्ट्रविरोधी गतिविधि से चिन्तित हो उठा। राष्ट्रहितैषी बुद्धिजीवियों के मस्तक पर चिन्ता की रेखाएं झलकने लगीं। सब सोचते थे कि इसका निराकरण कैसे किया जाये। दुःख का विषय यह भी था कि यह सारा प्रोपगेंडा मिथ्या था और पाश्चात्य लेखकों द्वारा प्रयुक्त फूट-नीति पर टिका था। ऐसा लग रहा था—जैसे अंग्रेजों का स्वप्न स्वतन्त्र भारत में साकार होने लगा है।

किसी को भी आगे न आता देख इस समाज और राष्ट्रविरोधी निन्दनीय गतिविधि को रोकने के लिए आर्यसमाज उठ खड़ा हुआ। अपने तर्क रूपी तीर और प्रमाण रूपी तरकस लेकर, दृढ़संकल्प के कमरबन्द से

कमर कसकर, वैचारिक युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया। वयोवृद्ध संन्यासी स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने सन् 1996 (विक्रमी संवत् 2053) को 'मनुवर्ष' घोषित कर दिया और मनुविरोधी वितण्डावाद को रोकने तथा मनु-सम्बन्धी सत्य मान्यताओं को प्रचारित-प्रसारित करने का कार्यक्रम बनाया। देश के कोने-कोने में आर्यसमाजों के माध्यम से मनु-विषयक उत्सवों के आयोजन हुए, अनेक स्थानों पर महासम्मेलन भी हुए, लेखों और ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। यह सब देखकर मनुविरोधी ठिठकने लगे। आर्यों के तर्कों और प्रमाणों के उत्तर न सूझने पर वे लोग बगलें झाँकते रह गये। मनुविरोधी अभियान में एक ठहराव-सा आ गया और भ्रान्तियों का प्रसार धीमा पड़ गया।

उसी वर्ष में स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने 'राजर्षि मनु' के नाम से आठ ट्रैक्ट प्रकाशित किये। एक ट्रैक्ट एक विद्वान के लेख पर आधारित था। लेखक सभी सुलझे हुए विद्वान् थे। विषय को प्रभावशाली शैली में प्रस्तुत करने की योग्यता उनकी लेखनी में थी। जिस लेखक का जैसा अपना विचार था उसको बिना किसी टीका-टिप्पणी के उसी रूप में प्रकाशित कर दिया। लक्ष्य यही था कि लोगों तक मनु-सम्बन्धी अच्छे विचार एक बार पहुँचें।

उसी वर्ष आर्यसमाज भुवनेश्वर (उड़ीसा) के उत्सव पर उड़िया के आर्य लेखक श्री प्रियव्रत दास जी इन्जीनियर के निमन्त्रण पर स्वामी जी का और मेरा जाना हुआ। हम दोनों एक ही कक्ष में तीन दिन रुके। 'राजर्षि मनु' नामक पुस्तिकाओं के सैद्धान्तिक पक्ष पर पर्याप्त चर्चा हुई। स्वामीजी ने मुझे टिप्पणी-सहित एक पुस्तकाकार में इनका सम्पादन करने को कहा। फिर वह बात विस्मृति के अन्धकार में विलीन हो गयी। कुछ वर्षों के बाद स्वामी जी महाराज भी दिवंगत हो गये।

विचित्र संयोग देखिए। आर्य साहित्य के प्रकाशक, प्रचारक और वितरक 'गोविन्दराम हासानन्द, नयी सड़क, दिल्ली' के मन में वही योजना वर्षों बाद फिर से अंकुरित हुई और उसके सम्पादन का दायित्व फिर से मुझ पर आ गया। तब तो यह पूरा नहीं हो सका किन्तु अब इसको पूरा कर अपने पाँच लेखों के साथ इसे पाठकों के हाथों में सौंप रहा हूँ। पाठक

इसका अध्ययन कर अधिकाधिक लोगों को पढ़ने को प्रेरित करें जिससे भारत के ही नहीं, अपितु मानव जाति के गौरव रूप महापुरुष, आदिराजा, विश्व के आदि संविधान निर्माता, आदि धर्मशास्त्रकार और मानवों के आदि–प्रमुख–पुरुष महर्षि मनु के विषय में फैलाई जा रही भ्रान्तियों पर विराम लग सके और मनु की प्रतिष्ठा की रक्षा हो सके।

इस राष्ट्रहितकारी पुण्य कार्य का प्रकाशन–दायित्व अपने हाथों में लेने के लिए 'गोविन्दराम हासानन्द' प्रकाशन के स्वामी श्री अजयकुमार जी शतशः धन्यवाद के पात्र हैं।

गुड़गांव **—डॉ० सुरेन्द्रकुमार**

अनुक्रम

1. आदिराजा और आदि विधि-प्रदाता मनु स्वायम्भुव 11
(जीवनवृत्त, व्यक्तित्व और कृतित्व) *(डॉ. सुरेन्द्रकुमार)*
2. मनुस्मृति की मौलिक मान्यताएँ *(डॉ. सुरेन्द्रकुमार)* 35
3. मनुस्मृति में प्रक्षेप : प्रमाण और दुष्परिणाम *(डॉ. सुरेन्द्रकुमार)* 54
4. मनुस्मृति : एक अध्ययन *(स्व. पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय)* 67
5. मनुस्मृति : रचनाकाल और प्रक्षेप *(स्व. आचार्य रामदेव)* 108
6. मनु की देन *(स्व. पं. भगवद्दत्त)* 138
7. राजर्षि मनु और मनुस्मृति *(स्व. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल)* 154
8. राजर्षि मनु और वेद *(डॉ. भवानीलाल भारतीय)* 169
9. मनु की वेदों के प्रति आस्था *(डॉ. कृष्णलाल)* 186
10. मनु की दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र *(डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल)* 210
11. चिन्तन की एक भिन्न दिशा : मनु की वर्ण-व्यवस्था में
शूद्र तथा अन्य वर्ण *(डॉ. उर्मिला रुस्तगी)* 238
12. वर्णव्यवस्था में आर्य-शूद्र वैमनस्य की अवधारणा
पाश्चात्य दुरभिसन्धि की देन *(डॉ. सुरेन्द्र कुमार)* 268
13. किस मनु का विरोध किया है डॉ० अम्बेडकर ने?
(डॉ. सुरेन्द्र कुमार) 276

10

मनु की दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र

डॉ० कृष्णवल्लभ पालीवाल
(समीक्षक)

गत दो सौ वर्षों में भारत के सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में यदि सबसे अधिक चर्चा किसी ग्रन्थ की हुई है तो वह है मनु की 'मनुस्मृति', जिसका हिन्दू धर्मशास्त्रों में वेद के बाद सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इसके कई कारण हैं। पहला तो यह—ग्रन्थ समग्र मानव—धर्म को व्यक्त करता है, तथा वैदिक वाङ्मय का सार और वैदिक (हिन्दू) विधि-विधान है। दूसरे, जहाँ प्राच्य विद्या के निष्पक्ष जिज्ञासु हजारों वर्षों पूर्व की धार्मिक मान्यताओं तथा सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को इससे समझना चाहते हैं तथा, श्रद्धालु हिन्दू इसमें अपने कर्तव्यों-अकर्तव्यों का मार्ग ढूँढ़ते हैं, वहीं दूसरी ओर हिन्दू धर्मशास्त्रों के आलोचक, वैदिक परम्पराओं से अनभिज्ञ, पूर्वाग्रहों से ग्रसित, कतिपय बिखरे सूत्रों के आधार पर मनुस्मृति को ब्राह्मणवादी तथा शूद्र एवं स्त्री-विरोधी होने का आरोप लगाते हैं।

ब्रिटिश राज्यकाल में ईसाई मिशनरियों द्वारा हिन्दुओं के धर्मान्तरण के लिए हिन्दू धर्मशास्त्रों की आलोचना करना तो समझ में आता है, परन्तु आज स्वतन्त्र भारत में, मनुस्मृति के यथार्थ स्वरूप को समझे बिना, उसके आधार पर जातिभेद का ज़हर घोलना कहाँ तक उचित है? जबकि सच्चाई यह है कि आज भी धर्म की स्वतन्त्रता (संविधान अनु० 25) की आड़ में विश्व-चर्च और पैन-इस्लामिक द्वारा समर्थित लगभग दस हजार धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक संगठन अंग्रेजों की भारत-विभाजन नीति पर कार्य कर रहे हैं और हिन्दुओं को 'मनुस्मृति' के आधार पर मनुवादी, ब्राह्मणवादी

आदि की मोहर लगाकर समाज में वर्गभेद और जातिद्वेष के ज़हर का बीज बो रहे हैं।

राजर्षि मनु और उनकी 'मनुस्मृति' पर आरोप लगाने और उनके प्रति आक्रोश एवं विरोध प्रकट करने से पहले मनु के चिन्तन, उनकी मानसिकता, 'मनुस्मृति' के आधार, उद्देश्य और उसके सात्त्विक स्वरूप को समझना होगा। साथ ही, यह भी समझना होगा कि अति प्राचीनकाल की धार्मिक मान्यताएँ, सामाजिक परम्पराएँ एवं राजनैतिक व्यवस्थाएँ आज व्यवहार में अपने मौलिक स्वरूप में कितनी रह गयी हैं। उनकी परिभाषाएँ कितनी बदल गयी हैं। अनेक नये पन्थों के उदय से उनकी प्रासंगिकता एवं व्यावहारिकता कितनी उपयोगी रह गयी है और यह भी विचार करना होगा कि मनु तत्कालीन समाज-व्यवस्था की रचना की ओर संकेत कर रहे हैं। साथ ही, क्या वर्तमान में प्राप्य 'मनुस्मृति' वास्तव में मनु की मूल 'मनुस्मृति' है? और यदि उसमें मिलावट है तो क्या, कितनी, किन-किन विषयों पर और किस काल में की गयी है?

प्राचीनकाल की वैदिक वाङ्मय से जुड़ी 'मनुस्मृति' का आज उसे एकांगी रूप में देखना पूर्वाग्रहों से ग्रसित ही माना जायेगा। अतः आज 'मनुस्मृति' के यथार्थ स्वरूप का मूल्यांकन करने के लिए हमें प्राचीन एवं अर्वाचीन की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों को समझना होगा। लेकिन उपर्युक्त सभी विषयों का तो एक लेख में विवेचन असम्भव होने एवं जाति-भेद की बढ़ती हुई समस्या के कारण हम यहाँ मनु की दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र विषय तक ही सीमित रहेंगे।

मनुस्मृति का आधार—मनु-रचित स्मृति को मनुस्मृति, मनुसंहिता एवं मानव-धर्मशास्त्र आदि कई नामों से कहा गया है। निस्सन्देह मनुस्मृति मुख्यतया एक विधि-विधानात्मक शास्त्र है। फिर भी इसमें एक ओर वर्णाश्रम धर्म, व्यक्ति एवं समाज-हितकारी नियमों, नैतिक कर्तव्यों, मर्यादाओं, आचरणों एवं आध्यात्मिक तत्त्वों का विवेचन है, तो दूसरी ओर इसमें समाज-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए विधि-विधानों, दण्डों, प्रायश्चित्तों आदि का भी समावेश है। विधि-विधान की दृष्टि से, वैदिक वाङ्मय में यह ग्रन्थ अति प्राचीन, सर्वोत्कृष्ट, सर्वमान्य एवं अत्यन्त

प्रामाणिक है। इसमें व्यक्ति और समाज की प्राचीन काल से आ रही मानवीय समस्याओं का विवेचन आधुनिक समाजविज्ञान की दृष्टि से भी सुन्दर, विचारोत्तेजक एवं प्रेरणादायक है।

आचार्य मनु का समस्त चिन्तन, मनन, मान्यताएँ एवं विधि-विधानों का आधार अपौरुषेय वेद हैं। वे स्वयं कहते हैं कि **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** (2/6) यानी मानव-धर्म-सम्बन्धी सभी मान्यताओं, व्यवहारों एवं आदर्शों का आधार वेद हैं। इतना ही नहीं, **''धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः''** (2/13) यानी मानव-धर्म के सम्बन्ध में जिज्ञासुओं के लिए वेद एवं वेदानुकूल ग्रन्थ ही प्रामाणिक हैं। उन्हीं से धर्म-अधर्म का निर्णय होता है। उनकी दृष्टि में मानवमात्र के लिए वेद ही सनातन चक्षु हैं—

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं वेदशास्त्रमितिस्थितिः॥ *(2/14)*

अर्थात् ''पिता, संरक्षक, पालक विद्वानों एवं मनुष्यों का वेद ही सदा सनातन चक्षु या मार्गदर्शक हैं, क्योंकि वेद अपौरुषेय हैं, एवं अनन्त सत्यविद्याओं से युक्त हैं, ऐसा मेरा विचार है।'' इतना ही नहीं, वे कहते हैं कि ''वेद ही प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। लोगों को अपने-अपने कर्तव्य का अपने-अपने धर्म में स्थिर रहते हुए पालन करना चाहिए।''

श्रुति प्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै॥ *(1/127)*

मनु की मान्यता है कि वेदों के द्वारा ही मनुष्य को संसार की वस्तुओं व धर्मों का प्रथम ज्ञान होता है (1/21), क्योंकि चारों वेद धर्म के प्रथम मूल स्रोत हैं और इनका कुतर्क आदि का सहारा लेकर खण्डन नहीं करना चाहिए (1/129-130)।

अतः मनु का मनन, चिन्तन एवं विषय-प्रस्तुति वैदिक मान्यताओं के ही अनुकूल हैं और जो कुछ भी आज 'मनुस्मृति' में वेदविरुद्ध है वह मनु की अवधारणाओं के प्रतिकूल होने के कारण अमान्य है, त्याज्य है, वह हिन्दू धर्म का अंग नहीं है।

मनुस्मृति की प्रामाणिकता—वैदिक वाङ्मय में सभी ऋषियों ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान एवं प्रामाणिक धर्मग्रन्थ माना है। वेदशास्त्र का कारण

ईश्वर है (शास्त्रयोनित्वाद् वेदा० 1/1/3)। ईश्वर ने अपनी शक्ति से वेद प्रकट किये (सांख्य० 5/51)। वेद ईश्वरीय ज्ञान है, इसलिए उसकी प्रामाणिकता सबसे ऊपर है (वैशेषिक 11/3)।

स्मृतियों के विषय में जैमिनि कहते हैं कि वे तभी तक प्रामाणिक हैं जब तक वे वेदानुकूल हैं **(विरोधत्वेन प्रेक्ष्यस्यादसति ह्यनुमानम्)** (मीमांसा 2/3/3)। ताण्डय ब्राह्मण (3/16/6/7) के अनुसार ''मनु का वचन सर्वोपरि एवं ओषधि के समान है'' **(यद्वै मनुर्वै, यत्किञ्चावदत् तद् भेषजम् भेषजतायै)**। आचार्य बृहस्पति कहते हैं कि जब स्मृतियों में विरोध हो तो 'मनुस्मृति' को मानना चाहिए और यह तभी जब 'मनुस्मृति' वेदानुकूल हो, मगर वेदप्रतिकूल होने पर नहीं—

वेदार्थोपनिबद्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्।
मन्त्रार्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शक्यते॥ *(बृहस्पति स्मृति)*

जाबाल ऋषि के अनुसार ''स्मृति और वेद में विरोध हो तो वेद को प्रधानता देनी चाहिए।'' (**श्रुति स्मृति विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी**—जाबाल स्मृति)

इसके अलावा आदि शंकराचार्य ने अपने वेदान्त-सूत्र में एवं विश्वरूप ने 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में 'मनुस्मृति' को प्रामाणिक माना है तथा आचार्य गौतम, वसिष्ठ, आपस्तम्ब, आश्वलायन, बोधायन आदि के सूत्र-ग्रन्थों में 'मनुस्मृति' का आदर से उल्लेख है। प्राचीन विद्वानों के अलावा आधुनिक युग के विदेशी एवं भारतीय विद्वानों जैसे एफ० नीत्शे, एच०पी० ब्लावट्स्की, मॉरिस मैटरलिंक, डॉ० ऐनी बेसेन्ट, पी०डी० औसपेंस्की, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ० एस० राधाकृष्णन, डॉ० भगवानदास, श्री अरविन्द आदि ने मनु को भारतीय चिन्तन का आधार माना है। नीत्शे ने तो यहाँ तक कहा है—''बाइबल को बन्द करो और मनु-शास्त्र को उठाओ।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनुस्मृति का आधार एकमात्र वेद एवं वेदानुकूल मान्यताएँ हैं और वर्तमान 'मनुस्मृति' में जो कुछ भी वेदविरुद्ध मिलता है उसका मनु की मूल रचना से कोई सम्बन्ध नहीं है। फलस्वरूप किसी भी वेदविरुद्ध कथन का सिर्फ वर्तमान 'मनुस्मृति' में होने

के कारण मनु का विरोध करना उचित नहीं है, क्योंकि उसके लिए मनु उत्तरदायी नहीं है।

मनु की समाज-व्यवस्था का आधार—मनु और मनुस्मृति पर जातिभेद एवं ब्राह्मणवाद का आरोप लगाना निराधार है, क्योंकि मनु द्वारा प्रतिपादित समाज-व्यवस्था वही है जिसका वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों, महाभारत, गीता आदि धर्मशास्त्रों में वर्णन किया गया है। मनु की समाज-व्यवस्था पूर्णतया व्यक्ति के गुण-कर्म-स्वभावानुसार है जिसे 'कर्मणा वर्ण-व्यवस्था' कहा गया है। वह आज की व्यक्ति के माँ-बाप की जाति के आधार पर 'जन्मना जाति-व्यवस्था' नहीं है। मनु ने जन्मना जाति-व्यवस्था का कहीं भी किसी प्रकार उल्लेख नहीं किया है। मनु की 'कर्मणा व्यवस्था' का मूल सिद्धान्त है—व्यक्ति का उसके गुण-कर्म-स्वभाव एवं रुचियों के अनुसार उसका सर्वांगीण विकास करने के अवसर प्रदान करना, उसकी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित करने की प्रेरणा देना और जैसे-जैसे व्यक्ति की आवश्यकता अथवा उसकी रुचियों में परिवर्तन आये, उसे उन्हीं के अनुसार उन्नति के सभी अवसर प्रदान करना। मनु की वर्ण-व्यवस्था व्यक्ति को धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों में जकड़नेवाली तथा स्थायी नहीं है। हाँ, वह स्वयं चुने हुए वर्ण के धर्म का पालन करने का आग्रह अवश्य करती है। संक्षेप में, मनु की वर्णव्यवस्था प्रेरणादायिनी, विकासशील, परिवर्तनशील, व्यक्तिवादी और सामाजिक समरसता-कारक है। मनु की 'कर्मणा वर्ण-व्यवस्था' को समझने के लिए हमें वर्ण और जाति के मूल स्वरूपों एवं परिभाषाओं को समझना होगा।

वर्ण—यह शब्द वेदों में अनेक बार आया है और अकेले ऋग्वेद के चौबीस मन्त्रों में है जिसका प्रसंगानुसार अर्थ है—रंग, रूप, अनिष्ट-निवारक, रश्मि, वर्णन-योग्य, कान्ति, प्रकाश, वरण करने योग्य, ब्राह्मणादि चारों वर्ण आदि। मगर समाज-व्यवस्था की दृष्टि से वर्ण शब्द स्वयं इसे कर्म-आधारित व्यवस्था सिद्ध करता है। निरुक्त के **वर्णो वृणोते** (2/14) सूत्र के अनुसार "वर्ण वह है जिसका गुण-कर्मानुसार वरण किया जाये।" स्वामी दयानन्द ने इसकी व्याख्या में कहा—"जिसके जैसे गुण हों उसको वैसा ही अधिकार देना वर्ण है" (ऋग्वेदादि भा०भू०)। अतः जब

कोई मनुष्य अपने गुण, कर्म, रुचि एवं योग्यतानुसार शिक्षा प्राप्त करता है और तदनुसार जीविका चुनता है या वरण करता है, तो वह उसका वर्ण कहलाता है। किसी के वर्ण का उसके माता-पिता के वर्ण के अनुकूल होना आवश्यक नहीं है। वह हो भी सकता है, और नहीं भी। वर्ण का निर्णय आचार्य करता है जो शिक्षाकाल में विद्यार्थी के गुण-कर्म-स्वभाव एवं अभिरुचियों को भलीभाँति जानता है।

जाति— गौतम ऋषि के अनुसार 'समान प्रसवात्मिका जातिः' (न्याय दर्शन 2/2/70) अर्थात् 'जिनके जन्म लेने की विधि एवं प्रसव एक-समान हों वे सब एक जाति के हैं।' समान प्रसव का भाव है— जिसके संयोग से वंश चलता हो व जिन प्राणियों का प्रसव-विधि, आयु और भोग एक-समान हों। जाति का दूसरा लक्षण है—आकृति, यानी जिन प्राणियों की आकृति एक-समान हो, वे एक जाति के हैं **(आकृति जाति लिंगः)**। इस परिभाषा से मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि विभिन्न जातियाँ हैं। परन्तु विश्व के सभी मानवों की आकृति एक ही है, अतएव वे एक ही जाति, मनुष्य-जाति के हैं (उत्तर पुराण), भले ही जलवायु, स्थान आदि के कारण मनुष्यों के रंग, लम्बाई आदि में मामूली अन्तर के कारण कुछ विभिन्नता दिखाई दे। आचार्य कपिल ने भी यही कहा है—'**मानुष्यश्चैकविधिः**' (सांख्य० 5/7) यानी संसार के मनुष्यों की एक ही जाति है। आज का वैज्ञानिक जगत् एवं विद्वान् भी (आचार्य महाप्रज्ञ—जैन दर्शन, पृ० 85) मानवमात्र को एक ही जाति का मानता है। फिर एक मनुष्य-जाति में से ब्राह्मण, बनिया, नाई, धोबी, जातियाँ कहाँ से और कैसे आईं?

भारतीय धर्मशास्त्रों ने इन्हें जातियाँ नहीं माना है। इतना जरूर है कि जिन लोगों के जीविका-साधन, जीवनचर्या एवं संस्कृति एक-सी हैं, वे ऊपर से एक-समान जीवन-पद्धति के कारण एक अध्यारोपित जाति है, जो कि जीविका-साधन व शिक्षा के अनुसार बदलती रहती है। आज जो ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण और वैश्य का वैश्य कहलाता है, यह जन्मना जाति-व्यवस्था है। इसकी धर्मशास्त्रों में कहीं स्वीकृति नहीं है। यह एक सामाजिक बुराई है और मनु की 'कर्मणा वर्ण-व्यवस्था' से ठीक विपरीत है। हालाँकि मनुस्मृति में जाति शब्द कई जगह आया है परन्तु उसका अर्थ

है 'जन्म'। जैसे—**जाति अन्धबधिरौ** (1/201) 'जन्म से अन्धे-बहरे'। **जाति स्मरति पौर्विकीम्** (4/148) 'पूर्वजन्म को स्मरण करता है।' **द्विजातिः** एवं **एक जातिः** (10/4) 'एक ही जन्म तथा जिसका दूसरा विद्याजन्म नहीं होता—शूद्र''। वस्तुतः 'मनुस्मृति' में जाति शब्द कहीं भी वर्तमान 'जन्मना जाति-व्यवस्था' के लिए नहीं कहा गया है। वैसे भी हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार वर्ण और जन्मना जाति शब्द एक-समान नहीं हैं और न वैदिक वाङ्मय में कहीं भी ये समानार्थक समझे गये हैं। साथ ही, यह कहना भी मुशिकल है कि प्राचीन कर्मणा वर्ण-व्यवस्था, पहले जन्मना वर्ण-व्यवस्था में और कालान्तर में रूढ़िवादी जन्मना जाति-व्यवस्था में कब और कैसे बदल गयी जो पूर्णतया अवैदिक, अनुचित और आत्मघाती है। मनु इसका कहीं भी उल्लेख या समर्थन नहीं करते।

मनु की वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति—मनु ने स्पष्टता गुण-कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि चार ही वर्णों को माना है, पाँचवाँ नहीं—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्र नास्ति तु पञ्चमः॥ *(10/4)*

जो कि वेदों के निम्नलिखित मन्त्रों पर आधारित है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

(ऋग्० 10/90/12, यजु० 31/11)

कुछ लोग (महाप्रज्ञ—जैन दर्शन, पृ० 481) इन मन्त्रों को जन्मना जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति का स्रोत मनाते हैं, जो कि ठीक नहीं है। परन्तु साथ ही आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि श्रमण-परम्परा के अनुसार ''ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने कर्म (आचरण) या वृत्ति के अनुकूल होते हैं।'' वस्तुतः वेदों के अनुसार ये चार प्रकार की मुख्य मूल प्रवृत्तियाँ, कर्म और जीविका के साधन हैं मनुष्यमात्र के—

कम्मुणा बंभणो होइ, खत्तिहो होइ कम्मुणा।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

(उत्तरज्झयणाणि 33/28)

जैन शास्त्र का उपर्युक्त कथन मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था के अनुकूल है।

वस्तुतः वेदों की वर्ण-व्यवस्था सृष्टिप्रधान सिद्धि है। इस विषय में ऋग्वेद (10 / 90 / 11) में प्रश्न किया गया है कि परम ब्रह्मरूपी पुरुष कैसा है? इसके उत्तर में उपर्युक्त मन्त्र (ऋग्० 10 / 90 / 12) में कहा गया है कि "वेदादि शास्त्रों एवं ईश्वर को जाननेवाला मनुष्य ब्राह्मण रूप में इस पुरुष का मुख है, बल-पराक्रमगुण-युक्त मनुष्य क्षत्रियरूप में इस पुरुष की बाँहें हैं, खेती, व्यापार आदि करनेवाला वैश्य-समुदाय इसका मध्य भाग है, और श्रम आदि करने वाला मनुष्य-समाज शूद्ररूप में इस विराट् पुरुष का पैर है। यहाँ परम ब्रह्म परमेश्वर की शक्तियों का आलंकारिक वर्णन है। समाजरूपी शरीर की सर्वांगीण उन्नति के लिए उत्तम शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान की उन्नति एवं तकनीकी विकास करनेवाले विद्वानों या ब्राह्मणों को मुख-रूप में, राष्ट्र की रक्षा व न्यायपूर्वक प्रशासन करनेवाले संयमी, मानसिक एवं शारीरिक दृढ़तावाले वीर पुरुषों को बाहूरूप में, उद्योग-धन्धों व व्यापार करनेवाले वैश्यों को मध्यमरूप में और उत्पादन करनेवाले कुशल एवं अर्धकुशल श्रमिकों को पैर अर्थात् आधार के रूप में वर्णित किया गया है। यह मनुष्य की वृत्ति एवं योग्यतानुसार कर्म का विभाजन है। सृष्टि-रचना का ऐसा ही आलंकारिक वर्णन शतपथ ब्राह्मण (2 / 1 / 4 / 12-13), महाभारत (आदिपर्व अ० 65, 66, 75, शान्तिपर्व अ० 208), वाल्मीकिरामायण (अयो० 110 / 3-6, अरण्य० 14), मनुस्मृति (1 / 8-15, 24-25, 32-41), भागवत (3 / 12-4-5) और विष्णु पुराण (अ० 17) में किया गया है।"

मनुस्मृति 1 / 31 में भी गुण-कर्मानुसार चारों वर्णों की उत्पत्ति का ऐसा ही वर्णन है—

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्॥

कुछ लोग शूद्र की उत्पत्ति 'ब्रह्मा के पैर से' कहकर उसे हेय दृष्टि से देखने का आरोप मनु पर लगाते हैं, जबकि समाजरूपी शरीर में पैर भी सिर, बाहू, छाती, पेट आदि की तरह उतना ही उपयोगी और सारे शरीर का

आधार है। दूसरे, शूद्र तपस्या का प्रतीक है (तपसे शूद्रम्, यजु० 30/5)। जैसे पैर के बिना शरीर स्थिर नहीं रह सकता, उसी प्रकार श्रम-बिना बाह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य आदि का कोई प्रयास सम्पन्न नहीं हो सकता। शूद्र श्रम या पारस्परिक सहयोग द्वारा तीनों वर्णों का पूरक है। आदि शंकराचार्य ने बृहदा० उपनिषद् (3/1/4/13) की व्याख्या में शूद्र को सबका पोषण करनेवाला पूषण या पृथिवी देवता कहा है। जैसे पृथिवी सब प्राणियों का आधार है, वैसे ही शूद्र सब वर्णों को समान और पारस्परिक प्रेम का प्रतीक माना है—

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥ *(यजु० 18/48)*

महाभारत (1/60/5) के अनुसार एक वर्ण के ही मनुष्य कर्म के आधार पर चार वर्गों में बाँटे गये हैं—

क्रिया कर्म विभेदेन चातुर्वर्ण्यम् प्रतिष्ठितम्।

गीता भी यही कहती है कि ''ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि चारों वर्ण गुण-कर्म-स्वभावानुसार किये गये हैं''—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः। *(4/13)*

वर्णों में पारस्परिक कोई विशेषता या भेद नहीं है—**न विशेषोऽस्ति वर्णानाम्**—(महाभारत, शान्तिपर्व 188/10) यानी सब वर्ण समान हैं। अतः शूद्र वर्ण हेय नहीं है। वह तो परिश्रम, तपस्या, उद्योग, पौरुष और समृद्धि का आधार है। अतः मनु की वर्ण-व्यवस्था तथा कर्म का विभाजन, गुण-कर्म-स्वभावानुसार होने से अत्यन्त वैज्ञानिक, सहयोगात्मक, विकासशील, प्रेरणादायक और समाज की आवश्यकतानुसार है।

वर्णों के लक्षण : मनु की वर्ण-व्यवस्था, वर्णों के लक्षण और उनके कर्तव्यों से और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। अष्टाध्यायी (4/2/59) के अनुसार ''वेदज्ञान के अध्ययन और परमेश्वर की उपासना में तल्लीन रहते हुए विद्या आदि उत्तम गुणों को धारण करने से व्यक्ति ब्राह्मण कहलाता है।'' ''जिसका तप, शौच, दम, शम, ज्ञान-विज्ञानादि बल निष्कलंक है, वह ब्राह्मण है'' (ऋ० 7/56/8)। ''जो ब्राह्मण वर्ण वाले मनुष्य चित्तवृत्ति से सूक्ष्म विषयों का विचार करते हैं, मन की चंचलता से

बचकर संयम, इन्द्रियनिग्रह कर समदृष्टि से अपनी जीविका चलाते हैं तथा बुद्धि-तर्क द्वारा ज्ञान का प्रचार करते हैं, ब्राह्मण हैं'' (ऋग्० 10/71/8)। ''जो यज्ञकर्त्ता, सत्यव्रती तथा वेदादिशास्त्रों का चिन्तन, मनन व गायन करता है, ब्राह्मण है।'' '**आग्नेयो ब्राह्मणः**' (ता० 15/4/8), **व्रतस्य रूपं यत्सत्यं,** शत० 12/8/2/4, **गायत्रो वै ब्राह्मणः,** ऐत० 1/28)। ''जिस व्यक्ति में सत्य, दान, क्षमाशीलता, मानवता, तप और धैर्य है, वही ब्राह्मण है।'' (महाभारत, वन० 180-21)—

सत्यं दानं क्षमाशीलं मानुषस्य तपो धृतिः।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र, स ब्राह्मण इति स्मृतः॥

पुनः गीता (18/42) के अनुसार ''जिस मनुष्य में शम, इन्द्रिय-दमन, पवित्रता, शान्ति, धर्म में दृढ़ता, कोमलता, निरभिमान, ज्ञान-विज्ञान में रुचि एवं ईश्वर-विश्वास है, वही ब्राह्मण है।''

भगवान् बुद्ध ने भी सज्जन, सदाचारी, क्षमाशील और तपस्वी व्यक्ति को ब्राह्मण माना है—'ब्राह्मणी के जन्म से व्यक्ति को ब्राह्मण नहीं' तथा 'तप, ब्रह्मचर्य, संयम, शम, दम, सत्य आदि से व्यक्ति ब्राह्मण बनता है' (भिक्षु धर्मरहित, जातिभेद और बुद्ध, पृ० 6)

मनु के अनुसार शास्त्रादि पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना ब्राह्मण-कर्म है और विद्या देना, यज्ञादि शुभ कर्म करवाना और दान लेना जीविका के साधन हैं। (1/88)। यही बात महाभारत (शान्ति० 17/78) में कही गयी है कि ''ब्राह्मण के लिए स्वाभाविक कर्म ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति एवं प्रचार करना तथा समाज की ज्ञान द्वारा समृद्धि करना है।''

वेद के अनुसार ''बलशाली, यज्ञकर्त्ता, तेजस्वी वे दिव्यगुण-युक्त व्यक्ति क्षत्रिय है'' (ऋग्० 10/66-8)। ''प्रजा का रक्षक, योद्धा, पराक्रमी व दान देनेवाला क्षत्रिय है'' (महाभारत, शान्ति० 189/5)। उसका मुख्य कर्तव्य ''राज्य-व्यवस्था व प्रजा की रक्षा करना है'' (गीता० 18/43) ''जो वेदाध्ययन से युक्त, कृषि, पशुपालन तथा अन्य व्यापार करते हैं, वैश्य हैं।'' (यजु० 9/40)। ''दान देना एवं सब प्रकार के व्यापार-कार्य करना वैश्य के लक्षण हैं'' (मनु० 1/90)।

इसी प्रकार गुण-कर्म-स्वभावानुसार शूद्र वह होता है जो प्रयास करने

पर भी अपनी मन्दबुद्धि व अज्ञानता के कारण किसी उन्नत स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाता और अपनी उन्नति की चिन्ता में दुःखी बना रहता है। वेदान्त (1/3/34) के अनुसार ''जो शोक के पीछे दौड़ता है, वह शूद्र है।'' डॉ० सूर्यकान्त के अनुसार ''जो मन्दबुद्धि शारीरिक परिश्रम से आजीविका-भोगी है, शूद्र है।'' ब्राह्मण-ग्रन्थों के अनुसार '**असतो वा एष सम्भूतो यत्र शूद**' तै० 3/23/9, **तपो वै शूद्रः** शत० 3/6/2/10) ''अज्ञान और अविद्या से जिसकी निम्न स्थिति रह जाती है, जो केवल परिश्रम आदि कर्म से जीविका कमाते हैं, शूद्र हैं।''

महाभारत (शान्ति० 189/8) के अनुसार ''जो सर्वभक्षी, सर्वकर्म-परायण, वेदज्ञान-रहित, अनाचारी और अपवित्र हैं वही शूद्र हैं।'' पुनः ''ब्राह्मण होते हुए भी यदि हिंसक, मिथ्यावादी, लोभी, सर्वकर्मोपजीवी और अशुद्ध रहे, तो वह शूद्र है।'' (महाभारत 181/13)

यही बात मनु कहते हैं कि ''वेदादि शास्त्रों को न पढ़नेवाला ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है'' (मनु० 2/168), यानी ज्ञान और शिक्षा का अभाव ही शूद्रत्व का लक्षण है।

केवल मोटवानी के अनुसार ''मनोवैज्ञानिक रूप में शूद्र के लक्षणों को परिभाषित नहीं किया गया है, क्योंकि वह अपनी मानसिकता को स्थिर कर अपने जीवन के लक्ष्य एवं आकांक्षाओं को समग्र रूप में निश्चित नहीं कर पाता है। वह अपनी मानसिक अस्थिरता के कारण परिस्थितियों के दबाव में बहक जाता है।'' इस अनिश्चितता के कारण शूद्र को अबोध बालक के समान माना गया है—''**जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते**'' (स्कन्द पु०) इसीलिए मनु ने उसे ''एक जातिः'' यानी एक जाति वाला शूद्र कहा है (**एक जातिस्तु शूद्रः,** मनु० 10/4) जबकि अन्य तीनों वर्णों के व्यक्तियों की वृत्तियाँ, कर्म और आकांक्षाएँ सुनिश्चित होने के कारण उन्हें द्विजाति या द्विज कहा गया है (मानव धर्मशास्त्र पृ० 53)। गीता (18/44) में 'परिश्रम द्वारा समाज की सेवा करना शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म है।'' **(परिचर्यात्मकं कर्मं शूद्रस्यादि स्वभावजम्)** यानी परिश्रम करना शूद्र का ही नहीं, अन्य वर्णों का भी स्वाभाविक कर्म है।

इसके अतिरिक्त सुप्रशिक्षित एवं अर्द्ध-प्रशिक्षित कारीगर श्रम-शक्ति के

प्रतीक हैं। जिन लोगों को शास्त्रज्ञान नहीं है परन्तु प्रशिक्षण, परिश्रम और अभ्यास से जिन्होंने किसी भी शिल्पकार्य में विशेषता प्राप्त कर ली है, वे शूद्र हैं। इसीलिए मनु कहते हैं कि ''कारीगरी के कार्य से शूद्र अपनी जीविका चला ले'' (**कारुक-कर्मभि जीवेत्,** 10 / 99) 'विविध प्रकार के शिल्पकार्यों को शूद्र करे'। (**तानि कारुक कर्माणि शिल्पानि विविधानि च,** 10 /100) और ''शिल्पी और कारीगर शूद्रों से काम करवा लेना चाहिए'' (**कर्मोपकरणः शूद्राः कारवः शिल्पनस्तथा,** 10 /120) अतः मनु के अनुसार कारीगरी के परिश्रम से जीविका-भोगी शूद्र है। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान व टैक्नॉलॉजी में, उद्योग-धन्धों में, सैन्य शक्ति में एवं विभिन्न वर्णों के प्रमुख आयोजनों में सहयोग देना शूद्र का स्वाभिमानपूर्ण श्रेष्ठ योगदान है। यह कोई हेय कार्य नहीं है। अपने समाज एवं देश की प्रगति के लिए किसी भी प्रकार का सहयोग राष्ट्रभक्ति का प्रतीक है। वस्तुतः ब्राह्मणों एवं विद्वानों के मानवकल्याण-कार्यों—यज्ञों में, क्षत्रियों के रक्षाकार्यों में और वैश्यों के उद्योग-धन्धों में सहयोग देना—द्विज-कार्यों में सेवा के ही समान है। समाज के विभिन्न घटकों की अपनी-अपनी वृत्तियों एवं योग्यताओं के मनसा-वाचा-कर्मणा सहयोग से ही किसी समाज व राष्ट्र की उन्नति होती है। यह तो सभी वर्णों की योग्यतानुसार सामूहिक योगदान की प्रक्रिया है।

अतः मनु की एक जाति शूद्र, द्विज एवं चारों वर्णों के लक्षण व्यक्ति के गुण-कर्म-स्वभाव एवं वृत्तियों के अनुसार हैं जो व्यक्तिगत विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने के आधार पर हैं जिससे व्यक्ति एवं समाज की आर्थिक समृद्धि तथा दोनों का सर्वोच्च विकास हो सके। इनमें किसी वर्ण का जन्मना जाति-व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है, बल्कि वर्ण-व्यवस्था जन्मना जाति-व्यवस्था के बिलकुल विपरीत है। मनु की वर्ण-व्यवस्था प्रगतिशील, विकासवादी, रचनात्मक, समयानुकूल परिवर्तनशील और व्यावहारिक है।

वर्ण-परिवर्तन का अधिकार—इतना ही नहीं, जन्मना जाति-व्यवस्था के समान, व्यक्ति का वर्ण स्थायी नहीं होता, परन्तु व्यक्ति की उन्नति व अवनति के साथ बदलता रहता है। मनु कहते हैं कि ''शूद्र मनुष्य शुभ कर्मों द्वारा ब्राह्मण, और ब्राह्मण दुष्कर्मों से शूद्र हो जाता है। वैसे ही क्षत्रिय

व वैश्य के विषय में जानो'' यानी ये भी अपना कर्तव्य पालन न करने पर शूद्र हो जाते हैं—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ *(मनु० 10/65)*

पुनः मनु कहते हैं कि ''जो मनुष्य प्रातः और सायं-सन्ध्योपासना, स्वाध्याय एवं ज्ञान-चिन्तन नहीं करता, उसको शूद्र के समान समझकर समस्त द्विज-कुल से बहिष्कार कर शूद्र-कुल में रख देना चाहिए''—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विकर्मणः॥ *(2/103)*

इसी प्रकार ''जो द्विज वेद को न पढ़कर अन्य शास्त्रों में परिश्रम करता है, वह जीवित ही अपने वंशसहित शीघ्र ही शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है।''

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ *(2/168)*

यही बात आपस्तम्ब धर्मसूत्र (2/5/10/11) में कही है कि ''धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण भी उत्तम हो जाता है और धर्मविरुद्ध आचरण से उत्कृष्ट वर्ण भी शूद्र हो जाता है।'' तथा वसिष्ठ धर्मसूत्र 13/31 के अनुसार ''वेदज्ञान-रहित, उपदेश देने में असमर्थ और यज्ञ न करनेवाला ब्राह्मण शूद्र हो जाता है।''

ब्राह्मण और शूद्र के गुणात्मक भेद को महाभारत और पुराणों में और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है जैसे कि ''ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होना, संस्कार, वेदश्रवण एवं ब्राह्मण पिता की सन्तान होना, ये ब्राह्मणत्व के कारण नहीं हैं, बल्कि सदाचारी और संयमी शूद्र व्यक्ति भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सकता है'' (महाभारत अनु० 143/5)।

''हे युधिष्ठिर! कोई मनुष्य कुल, जाति और क्रिया के कारण ब्राह्मण नहीं हो सकता। यदि चाण्डाल भी सदाचारी व संयमी है तो वह भी ब्राह्मण होता है'' (महाभारत अनु० 226/14)। ''जो ब्राह्मण दम्भी, पापी व दुष्कर्मी होता है वह शूद्र, और जो शूद्र इन्द्रिय-संयम, सत्य और धर्म में स्थित रहता है, मैं उसे ब्राह्मण मानता हूँ क्योंकि मनुष्य सद्वृत्तियों से ही

ब्राह्मण बनता है।'' (महाभारत वन० 216 / 14)। ''यदि शूद्र ज्ञानसम्पन्न हो तो वह ब्राह्मण से भी श्रेष्ठतर है और इसके विपरीत यदि ब्राह्मण आचरणभ्रष्ट है तो वह शूद्र से भी नीचा है'' (भवि० पु० 44 / 33)। अतः उपर्युक्त सन्दर्भों से इस बात की पुष्टि मिलती है कि मनु-कथित वर्ण-परिवर्तन की प्रेरणादायक प्रक्रिया को भविष्य पुराण के रचानकाल तक मान्यता थी, क्योंकि मनु का समस्त चिन्तन का उद्देश्य व्यक्ति की सुप्त शक्तियों को जगाकर उसे उच्चतम अवस्था तक पहुँचाने का मार्ग खोलना है, आत्म-विकास के सभी मार्ग एवं साधन अपनाने की प्रेरणा देना है।

वर्ण-परिवर्तन के उपाय—मनु ने न केवल शूद्र को ब्राह्मण तक बनने की स्वतन्त्रता एवं अधिकार दिया, बल्कि उसका साधन भी बताया है कि ''सकल विद्या पढ़ने-पढ़ाने, ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि नियम पालने, अग्निहोत्रादि होम करने, सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग, वेदस्थ कर्म-उपासना-ज्ञान-विद्या के ग्रहण, पक्षेष्टि यागादि करने, सुसन्तानोत्पत्ति एवं पालन, पञ्चमहायज्ञ और अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या विज्ञानादि यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्राह्मण का शरीर बनाया जाता है।'' (भाष्य—सुरेन्द्र कुमार)

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तुनः॥ *(मनु० 2 / 28)*

पुनः मनु कहते हैं कि मनुष्य अपने कुल को उत्तम करना चाहे, वह अधम और संकीर्ण स्वभाव के लोगों का साथ छोड़कर नित्य सदाचारी व श्रेष्ठ पुरुषों से सम्बन्ध बढ़ाता जाये। ब्राह्मण वर्ण की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति श्रेष्ठ-श्रेष्ठ लोगों से सम्बन्ध बढ़ाते हुए और अधम व नीच लोगों की संगति छोड़ते हुए और अधिक श्रेष्ठता को पाये। इसके विपरीत व्यवहार करने से ब्राह्मण भी अवनत होकर शूद्रता को पा जाता है (4 / 244-245)—

उत्तमैरुमत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह।
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत्॥
उत्तमानुत्तमान्गच्छन् हीनान्हीनांश्च वर्जयन्।
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम्॥

अतः सत्याचरण, संयम, मधुर व्यवहार एवं दुर्गुणों को त्यागने से व्यक्ति क्रमशः विकास द्वारा ब्राह्मण (सदाचारी) बन सकता है। मनु बार-बार व्यक्ति को निजी धर्म, प्रवृत्तियों एवं आत्मिक शक्तियों के सर्वांगीण विकास पर बल देते हैं। केवल मोटवानी की समीक्षा के अनुसार ''मनु के सामाजिक सिद्धान्त का मूल-केन्द्र धर्म है। उनका उद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया, सामाजिक शक्तियों, समाजव्यवस्था-नियन्त्रण, सामाजिक व्यवस्थाओं, सामाजिक मान्यताओं और सामाजिक प्रगति आदि को प्रतिपादित करना है। धर्म की अवधारणा व्यक्ति के सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को व्यक्त करती है और धर्म व्यक्ति में अन्तर्निहित एक वैशिष्ट्य है जो व्यक्तियों का पारस्परिक विभेदक भी है। हम किसी व्यक्ति को उसके धर्म से जानते हैं।'' (मनु धर्मशास्त्र, पृ० 55)

वर्ण-परिवर्तन को मान्यता—मनु-प्रोक्त वर्ण-परिवर्तन न केवल सैद्धान्तिक था, वरन् उसका समाज में व्यवहार भी होता था, क्योंकि तब समाज एवं राज्य-व्यवस्था वेदानुसार थी। इस लेखक ने अपनी 'हिन्दू धर्मशास्त्रों में छुआछूत' पुस्तक में वेदों के ऋषियों एवं पुराणों के अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि वेदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि ब्राह्मण ही नहीं, परन्तु वे भी थे जो पहले कभी क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र थे अथवा दासी-पुत्र एवं शूद्रा माँ की सन्तान थे। जीविका के लिए अनेक ब्राह्मण वैश्य हो गये और ईश्वर-साधना के लिए अनेक क्षत्रिय व वैश्य ब्राह्मण बन गये। अनेक परिवारों में विभिन्न वर्णों के पुत्र होते थे, जैसाकि हम आज भी देखते हैं कि एक ही दम्पती की विभिन्न सन्तानें डॉक्टर, इन्जीनियर, व्यापार-प्रबन्ध, सेनाधिकारी तथा कम पढ़े-लिखे भी होते हैं। परन्तु डॉ० अम्बेडकर वर्ण-व्यवस्था की व्यावहारिकता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं (सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 154)। वर्तमान समाजविज्ञान के शोधकार्य ने सिद्ध किया है कि गत 15-20 वर्षों में विभिन्न जातियों के एक ही प्रकार की शिक्षा जैसे मेडिसिन व इन्जीनियरिंग, या एक ही प्रकार की जीविका जैसे सर्विस करनेवाले युवा-युवतियों में विवाह की संख्या बढ़ी है। यह समान गुण-कर्म-स्वभाव यानी वर्णानुकूलन नहीं है तो क्या है? राज्य-व्यवस्था द्वारा गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली एवं वर्णाश्रम-व्यवस्था अपनाने पर वर्ण-व्यवस्था पूर्णतया व्यावहारिक है

जोकि वर्तमान राज्य-व्यवस्था बदलने पर ही सम्भव है।

क्या मनु द्वारा शूद्र उपेक्षित है?—''मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था में शूद्र उपेक्षित, अस्पृश्य और घृणा का पात्र नहीं है। मनु का चिन्तन वेद-आधारित है जिसमें सब बराबर हैं—**अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय** (ऋग्० 5/60/5), यानी मनुष्यों में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा, ये सब बराबर के भाई हैं। वे सब मिलकर लौकिक और पारलौकिक उत्तम ऐश्वर्य के लिए प्रयत्न करें।'' वेदों में शूद्र कहीं भी हेय या निम्न श्रेणी का नहीं माना गया है। उसे भी वेद पढ़ने और यज्ञ करने का अधिकार दिया गया है। यजुर्वेद (26/2) के अनुसार ''जैसे ईश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, स्त्री, सेवक और उत्तम-अन्त्यज आदि मनुष्यों को वेदवाणी का उपदेश करता है, वैसे ही सब मनुष्य अच्छे प्रकार इसका उपदेश करें। इसमें किसी का अनधिकार नहीं है''—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।

'अहिर्बुध्न्य संहिता' (55/20-21) में चारों वर्णों को वेदाध्ययन का अधिकार है। वेदों में शूद्रों को यज्ञ करने की स्वतन्त्रता है—**पञ्चजनाः मम होत्रं जुषध्वम्** (ऋग्० 10/43/4-5)—''जैसे हम विद्वज्जन वाणी के मुख्य वचन वेदज्ञान का आचरण करें जिससे हम असुर प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करें। हे यज्ञ करनेवालो! चारों वर्णों और पाँचवें अवर्ण मनुष्यो! मेरे द्वारा उपदिष्ट यज्ञ को किया करो।''

मनुस्मृति में भी 'शूद्रों को अपने धर्मपालन का अधिकार है' (**न धर्मात्प्रति वेधनम्,** 10/126)। मनु ने चारों वर्णों के आवश्यक कर्मों में वेदाध्ययन और धर्मपालन का उपदेश दिया है (1/31, 87-91 आदि)। शूद्र आर्य है। मनु के अनुसार किसी भी वर्ण में दीक्षित व्यक्ति आर्य है (10/57)। डॉ० अम्बेडकर ने भी शूद्र को आर्य एवं क्षत्रिय माना है ('शूद्रों की खोज', पृ० 61)। मनु ने सम्मान के क्रमशः पाँच आधार माने हैं—धन, कुटुम्ब, आयु, उत्तम कर्म और विद्या। इनमें मुख्यतया शूद्र को आयु के आधार पर सम्मान्य माना है (2/136-137)। अपने से न्यून से भी विद्या-अनुभव मिले तो ग्रहण करना चाहिए।

शूद्र दास नहीं है। शूद्र से काम लेकर पारिश्रमिक न देना मनु-व्यवस्था के विरुद्ध है। मनु ने सेवकों व भृत्यों को वेतन, स्थान और पद के अनुसार नियत करने का आदेश दिया है और सुनिश्चित किया है कि अनावश्यक रूप से उनका वेतन काटा न जाये (7 / 125-126) तथा लम्बी बीमारी पर भी वेतन दिया जाये (8 / 216)। पुनः द्विजों को आदेश है कि "वे अपने भृत्यों को, जो कि अक्सर शूद्र होते थे, पहले भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन करें" (3 / 116)। क्या किसी तथाकथित वर्णरहित समाज में सेवकों को पहले भोजन कराया जाता है? मनु की दृष्टि कितनी मानवीय, उदात्त और समुचित है! फिर भी आरोप?

मनु ने शूद्र के प्रति भेदभाव नहीं किया है, बल्कि इसके विपरीत निर्धारित आयु-सीमा तक उपनयन में दीक्षित न होनेवाला 'व्रात्य' शूद्र कहलाता है जो प्रायश्चित्त करके पुनः द्विज बन जाता है (2 / 37 / 40)

दण्ड-व्यवस्था में मनु विद्वान् एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति के प्रति ज्यादा कठोर हैं, जैसे "चोरी करे उस शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को 16 गुणा, क्षत्रिय को 32 गुणा और ब्राह्मण को 64 या 100 या 128 गुणा दण्ड देना चाहिए।" (8 / 337-338)। जिस अपराध में सामान्य मनुष्य पर एक पण दण्ड हो, उसी अपराध में राजा को एक हजार गुणा दण्ड हो (8 / 336)। मनु की दण्ड-व्यवस्था में किसी को छूट नहीं, भले ही वे आचार्य, पुरोहित एवं राजा के माता-पिता ही क्यों न हों। राजा दण्ड दिये बिना मित्र को भी न छोड़े और कोई समृद्ध व्यक्ति शारीरिक अपराध-दण्ड के बदले विशाल धनराशि देकर छूटना चाहे तो उसे कभी न छोड़े (8 / 335, 347)—

पिताऽऽचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति॥
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुत्सृजेत् साहसिकान् सर्वभूतभयावहान्॥

जातिभेद का कारण : मनुस्मृति में प्रक्षेप—आज जो मनु पर शूद्र और नारी-विरोधी तथा ब्राह्मणवादी होने का आरोप लगाया जाता है, उसका मुख्य कारण निस्सन्देह 'मनुस्मृति' के वे श्लोक हैं जिनमें जातिभेद, ब्राह्मणों

को वरीयता, शूद्रों को हेयता, स्त्रियों की उपेक्षा, मांसभक्षण, वेदपठन-पाठन के अधिकार में पक्षपात आदि हैं। ये सभी श्लोक मनु के मूल आदर्श 'वेद चक्षु सनातनम्' के विरुद्ध हैं जो कि बाद में 'मनुस्मृति' में मिलाये गये हैं। नवीनतम शोधकार्य से सिद्ध हुआ है कि इस्लामी राज्यकाल की नौवीं सदी से लेकर विभिन्न कालों में 'मनुस्मृति' में मिलावट होती रही है, जो मुख्यतया समाज-व्यवस्था, वर्णाश्रम धर्म और स्त्रियों के कर्तव्यों-अकर्तव्यों व अधिकारों के विषय में है। प्राचीनकाल में हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का प्रचार था जिनमें श्लोक मिलाना बहुत ही आसान था।

लगातार मिलावट—

1. नौवीं सदी की मेधातिथि की टीका से बारहवीं सदी की कुल्लूक भट्ट की टीका में ही एक सौ सत्तर श्लोक अधिक पाये गये हैं। क्योंकि वे पूरी तरह घुल-मिल नहीं पाये, इसलिए वे कोष्ठक में दिये गये।

2. पाश्चात्य शोधकर्ताओं जैसे बुहलर, ज० जॉली, ए०बी० कीथ, मैक्डॉनल और ऐन्साइक्लोपीडिया (अमरीका) के लेखकों ने भी मनुस्मृति में प्रक्षेप माने हैं।

3. महर्षि दयानन्द ने जहाँ अपने ग्रन्थों में 'मनुस्मृति' के वेदानुकूल 514 श्लोकों को प्रामाणिक मानकर उद्धृत किया है, वहीं उन्होंने 'मनुस्मृति' में प्रक्षेप माने हैं।

4. 1907 में प्रकाशित मनु-भाष्य में तुलसीदास स्वामी ने 'मनुस्मृति' में प्रक्षेप माने हैं। इसीलिए चन्द्रमणि विद्यालंकार, सत्यकाम सिद्धान्तशास्त्री और प्रो० सुरेन्द्रकुमार ने 1981 में प्रक्षेपों को निकालकर 'मनुस्मृति' के शुद्ध संस्करण छापे हैं।

5. नेत्रपाल शास्त्री ने 1986 में तीस मनुस्मृतियों की समीक्षा करके पाया कि उनमें पाठभेद व पाठ-आधिक्य है और तीन सौ सत्तर श्लोक मिलाये गये हैं।

6. डॉ० उर्मिल रुस्तगी और स्वदेश नारंग ने 'मनुस्मृति' के पाँच प्रमुख भाष्यों की तुलना करके सिद्ध किया कि इन स्मृतियों में कुल श्लोक-संख्या, उनके क्रम और अध्यायों में श्लोकों के वितरण में काफी अन्तर है। उन्होंने इन संस्करणों के 2683-2691 श्लोकों में से 47 से लेकर 1502

श्लोक मिलावटी पाये।

मनुस्मृतियों के विभिन्न संस्करणों में बाद के राजाओं, ऋषियों एवं स्मृतिकारों के नामों से मिलावट साफ सिद्ध होती है। वर्णसंकर जातियों के नाम, श्राद्ध-व्यवस्था एवं अन्य वेद-विरोधी मान्यताओं का विद्यमान होना मनु के मूल आदर्शों के विरुद्ध होने से प्रक्षेप साफ सिद्ध होते हैं।

आखिर मिलावट क्यों—'मनुस्मृति' हिन्दुओं के विधि-विधान का एक प्रामाणिक धर्मशास्त्र है। धर्मान्तरणकारी इस्लाम और विश्वचर्च का सदैव से हिन्दू धर्मशास्त्रों को हेय सिद्ध करके हिन्दुओं के धर्मान्तरण की गति को तेज करने का उद्धेश्य रहा है। ब्रिटिश राज्यकाल में विलियम जोन्स ने 1794 में 'मनुस्मृति' का सबसे पहले अंग्रेजी में अनुवाद किया। मिशनरियों ने 'मनुस्मृति' में प्रक्षेपों की अतिशयोक्ति करके हिन्दू धर्म के विषय में व्यापक कुप्रचार किया जिसको ब्रिटिश राज का भरपूर समर्थन मिला। इस तरह इन मिशनरियों ने एक तरफ 'मनुस्मृति' को हिन्दू धर्मशास्त्र कहा और दूसरी तरफ 'मनुस्मृति' के उदात्त, व्यापक, मानवोपयोगी, विकासवादी स्वरूप की उपेक्षा करके इन प्रक्षेपों के आधार पर इसे ब्राह्मणवादी और शूद्र-विरोधी कहकर जातिभेद की खाई को लगातार गहरा खोदा जिसमें चर्च-समर्थित भारतीय लेखकों ने भी साथ दिया। इस प्रकार की मिलावट वेदों के अलावा लगभग सभी प्रमुख हिन्दू धर्मशास्त्रों में है।

प्रक्षेपों की वैज्ञानिक परीक्षा—'मनुस्मृति' में मिलावटी श्लोकों के परीक्षण के लिए प्रो० सुरेन्द्रकुमार ने सबसे पहले व्यवस्थित ढंग से पूर्वाग्रहों से मुक्त और तटस्थ रहकर एक वैज्ञानिक शैली विकसित की है जिसके सात आधार या मापदण्ड हैं। वे आधार हैं—

1. अन्तर्विरोध या परस्पर-विरोध, 2. प्रसंग-विरोध, 3. विषय-विरोध, 4. अवान्तर-विरोध 5. शैली-विरोध, 6. पुनरुक्ति, और 7. वेद-विरोध (मनुस्मृति सुरेन्द्र कुमार पृ० 7)। ये मापदण्ड निश्चित रूप से किसी भी पुस्तक में प्रक्षेपों को ढूँढ़ निकालने की अनुपम वैज्ञानिक शैली है जिसे कोई भाषाविद् अस्वीकार नहीं कर सकता। प्रो० सुरेन्द्रकुमार ने इन मापदण्डों के आधार पर 'मनुस्मृति' के वर्तमान संस्करण के प्रत्येक श्लोक

को परखा, प्रक्षेपों को ढूँढ़ा और उनको निकालने के उपर्युक्त एक या अधिक विरोधों के कारणों की समीक्षा करते हुए 'मनुस्मृति' के 2685 श्लोकों में 1471 को प्रक्षिप्त माना तथा उन्हें निकालकर एक विशुद्ध 'मनुस्मृति' प्रकाशित की है। तदनुसार विभिन्न अध्यायों में कुल व प्रक्षिप्त (कोष्ठ में) श्लोक इस प्रकार हैं—1. 144 (66), 2. 224 (60), 3. 286 (202), 4. 260 (170) 5. 169 (128), 6. 97 (33), 7. 226 (42), 8. 420 (187), 9. 168, 10. 142 (127), 11. 266 (234), और 12. 126 (84)।

अत: सबसे अधिक प्रक्षेप समाज-व्यवस्था, शूद्र तथा ब्राह्मण और स्त्रियों से सम्बन्धित विषयों पर है।

ब्राह्मण-शूद्र सम्बन्धी प्रक्षेप क्या ? आज मनु पर जो ब्राह्मणवादी और शूद्र-विरोधी होने का आरोप लगाया जाता है, उसका मूल कारण उपर्युक्त प्रक्षिप्त श्लोक हैं। इनमें से शूद्र-ब्राह्मण सम्बन्धी 127 श्लोक मिलावटी हैं जिनका हिन्दी-भाष्य यहाँ आगे दिया जा रहा है ताकि पाठकों को स्पष्ट हो सके कि कौन-कौन-से विचार मनु की मूल मान्यताओ के विरुद्ध और अमान्य हैं। मगर इन अर्थों को पढ़ते समय दो समाज-व्यवस्था कर्मणा व्यवस्था हैं, वर्तमान जन्मना जाति-व्यवस्था नहीं। तदनुसार ब्राह्मण का अर्थ विद्वान, ज्ञानी, तपस्वी, जितेन्द्रिय व्यक्ति है और शूद्र का अर्थ कम या बिना पढ़ा-लिखा, अल्पज्ञ, कुशल या अर्धकुशल कारीगर है। दूसरे, मनु के कर्मणा वर्ण-व्यवस्था के ब्राह्मण एवं अनुसूचित, जनजाति और पिछड़ी जातियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुत: मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था का आज की जन्मना जाति-व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है, बल्कि दोनों व्यवस्थाएँ परस्पर विरोधी हैं जैसाकि अम्बेडकर ने भी माना है।

शूद्र एवं ब्राह्मण-सम्बन्धी प्रक्षिप्त श्लोकों का अध्यायानुसार विवरण

(मनुस्मृति-प्रो० सुरेन्द्रकुमार कृत हिन्दी भाष्य, तृतीय संस्करण 1991)

1. (1/116, पृ० 94), 2. (1/143, पृ० 114), 3. (2/62, पृ० 141), 4. (2/135, पृ० 177), 5. (2/172, पृ० 193), 6. (3/13, पृ० 232), 7. (3/14, पृ० 232), 8. (3/15, पृ० 232), 9. (3/16, पृ०

233), 10. (3 /17, पृ० 234), 11. (3 /18, पृ० 233), 12. (3 /19, पृ० 233), 13. (3 /23, पृ० 237), 14. (3 /44, पृ० 249), 15. (3 /64, पृ० 260), 16. (3 /110, पृ० 284), 17. (3 /112, पृ० 284), 18. (3 /156, पृ० 296), 19. (3 /191, पृ० 303), 20. (3 /197, पृ० 304), 21. (3 /249, पृ० 314), 22. (3 /250, पृ० 314), 23. (4 /80, पृ० 340), 24. (4 /81, पृ० 351), 25. (4 /140, पृ० 367), 26. (4 /211, पृ० 391), 27. (4 /218,पृ० 393), 28. (4 /223, पृ० 394), 29. (4 /253–254, पृ० 404), 30. (5 /83, पृ० 431), 31. (5 /92, पृ० 433), 32. (5 /99, पृ० 434), 33. (5 /104, पृ० 435), 34. (5 /139, पृ० 446), 35. (5 /140, पृ० 546), 36. (8 /20, पृ० 616), 37. (8 /21, पृ० 616), 38. (8 /22, पृ० 617), 39. (8 /68, पृ० 631), 40. (8 /88, पृ० 638), 41. (8 /102, पृ० 642), 42. (8 /104, पृ० 642), 43. (8 /113, पृ० 644), 44. (8 /142, पृ० 657), 45. (8 /267, पृ० 692), 46–47. (8 /268–269, पृ० 692), 48–49. (8 /270–272, पृ० 692), 50. (8 /277, पृ० 694), 51. (8 /374, पृ० 724), 52. (8 /377, पृ० 724), 53. (8 /379, पृ० 725), 54. (8 /380, पृ० 726), 55. (8 /381, पृ० 725–726), 56. (8 /382), 57. (8 /383), 58. (8 /384), 59. (8 /385, पृ० 726), 60. (8 /410, पृ० 734), 61. (8 /412, पृ० 735), 62–63. (8 /413–414, पृ० 735), 64–65. (8 /417–418, पृ० 736), 66. (9 /98, पृ० 768), 67–74. (9 /150, पृ० 786), (9 /151), (9 /152–153), (9 /154), (9 /155, पृ० 787), (9 /157 पृ० 787) (9 /160, पृ० 780), 75–76. (9 /178–179, पृ० 792–793), 77. (9 /229, पृ० 806), 78. (9 /248, पृ० 811), 79–80. (10 /8–9, पृ० 841), 81. (10 /12), 82–83. (10 /16, 18, पृ० 842–843), 84. (10 /30, पृ० 845), 85–86. (10 /41, 43, पृ० 847), 87. (10 /64, पृ० 856, 88–89. (10 /66–67, पृ० 860), 90. (10 /73, पृ० 861), 91–92. (10 /90, 92 पृ० 865–866), 93–95. (10 /98, पृ० 867), (10 /99), (10 /100, पृ० 867), 96. (10 /103, पृ० 868), 97. (10 /110, पृ० 869), 98. (10 /117 पृ० 870), 99. (10 /120, पृ०

875), 100. (10 /123, पृ० 876), 101. (10 /124), 102. (10 /125), 103. (10 /126), 104. (10 /127, पृ० 877), 105. (10 /128), 106. (10 /129, पृ० 877), 107. (11 /131, पृ० 882), 108. (11 /24, पृ० 885), 109. (11 /34, पृ० 887), 110–111. (11 /42–43, पृ० 888), 112. (11 /66, पृ० 896), 113. (11 /67), 114. (11 /69, पृ० 896), 115. (11 /97,पृ० 902), 116–118. (11 /127, 128, 130, पृ० 908), 119. (11 /138, पृ० 910), 120. (11 /148, पृ० 912), 121. (11 /152, पृ० 912–913), 122. (11 /175, पृ० 917), 123. (11 /178, पृ० 917), 124. (12 /72, पृ० 971)

अतः उपर्युक्त मिलावटी श्लोकों से स्पष्ट होता है कि वर्तमान मनुस्मृति में सार्वजनिक सम्मान, विवाह एवं दण्ड–व्यवस्था में ब्राह्मणों को वरीयता और शूद्रों को हेयभाव 'मनुस्मृति' का अंग नहीं हैं। ये विचार मनु की 'वेद चक्षु सनातनम्' के मूल आधार से विपरीत, व अप्रामाणिक होने से अमान्य और त्याज्य हैं। हिन्दू धर्म इन प्रक्षेपों के कथित विचारों के आधार पर वर्तमान जात–पाँत, ऊँच–नीच और जन्मना जाति–व्यवस्था को मान्यता नहीं देता। यदि कोई व्यक्ति, समुदाय या संस्था विश्वचर्च, पैन–इस्लामिक संगठन एवं अन्य पूर्वाग्रहों से ग्रसित होकर जान–बूझकर मनुस्मृति एवं हिन्दू धर्म को कलंकित करने का प्रयास करता है, तो मनु के साथ अन्याय होगा। सामाजिक न्याय के नाम पर सामाजिक अन्याय होगा।

अनुसूचित व पिछड़ी जातियाँ शूद्र नहीं—आज की अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ एवं पिछड़ी जातियाँ शूद्र वर्ण की नहीं हैं, क्योंकि शूद्र वर्ण की परिभाषा और लक्षण उपर्युक्त जातियों पर लागू नहीं होते। मनु के अनुसार जिनका विद्यारूपी ब्रह्मजन्म नहीं होता, वह 'एक जाति' रहनेवाला व्यक्ति शूद्र है। ''**शूद्रेण हि समस्तावद् यावद् वेदे न जायते**'' (मनु० 2 /172) यानी ''जब तक व्यक्ति का वेदाध्ययनरूप जन्म नहीं होता, तब तक वह शूद्र के समान ही होता है।'' यही बात स्कन्द पुराण में कही है कि 'प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है, उपनयन–संस्कार व शिक्षा से दीक्षित होकर ही वह द्विज बनता है। अतः मनु ने कहा—जिनका नियमित शिक्षा–दीक्षा से विद्यारूपी दूसरा जन्म हो चुका होता

है वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि द्विज हैं (मनु० 10/4)। इस परिभाषा के अनुसार अशिक्षित, अज्ञानी, जन्म के ब्राह्मण शूद्र हैं और जन्म के अनुसूचित व पिछड़ी जातियों के अनेक सुशिक्षित, इन्जीनियर, डॉक्टर व अन्य विद्वान लोग ब्राह्मण हैं। अतः मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था आज के हिन्दू समाज की जन्मना जाति-व्यवस्था पर लागू नहीं होती, क्योंकि मनु जन्मना जाति-व्यवस्था का उल्लेख तक नहीं करते हैं, समर्थन का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए 'मनुस्मृति' में प्रक्षिप्त वर्ण-संकरता अवश्य है, मगर जन्मना जाति-व्यवस्था नहीं है। यदि बाद के लोगों ने किसी कारणवश मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था को विकृत कर वर्ण-संकरों को या अन्य जातियों को शूद्रों में शामिल कर दिया तो इसमें मनु का क्या दोष? इस विकृतीकरण के बाद ब्राह्मणादि वर्णों से बाह्मण जातियाँ या अनेक उपजातियाँ तो बन गईं, मगर फिर भी शूद्र नाम की कोई जाति नहीं बनी है। मनु के अनुसार ''जो उच्च वर्णों में दीक्षित हैं मगर उनके निर्धारित कर्तव्यों का पालन नहीं करते हैं, वे शूद्र हो जाते हैं (मनु० 2/126, 169, 170, 172, 10/4 आदि), फिर भी शूद्र जाति नहीं, क्योंकि मनु के समय तक जन्मना जातियाँ नहीं बनी थीं। पुनः आज सरकार द्वारा स्वीकृत अनेक अनुसूचित जातियों, जनजातियों और पिछड़ी जातियों का उद्‌गम तो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णों तथा पञ्चजनों एवं उनकी वर्ण-संकर और उपजातियों से सम्बन्धित हो सकता है। ये सब जन्मना जातियाँ हैं, अतः उन पर मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था के लागू होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, तो फिर इन जातियों द्वारा मनु-विरोध क्यों?''

मनु, अम्बेडकर और जाति-व्यवस्था—मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था अपनी प्रकृति के अनुसार जीविका-चयन, श्रम-विभाजन एवं विधि-विधान का कालान्तर में धीरे-धीरे विकृतीकरण हुआ। यह कब, क्यों और कैसे हुआ—कहना मुश्किल है, मगर आज हिन्दू-समाज में जो विकृत जन्मना जाति-व्यवस्था प्रचलित है, उसका प्रामाणिक हिन्दू धर्मशास्त्रों—वेदों एवं वेदानुकूल ग्रन्थों में कहीं समर्थन नहीं किया गया। फिर भी उसको मनु के नाम से जोड़कर मनु और हिन्दू धर्म की निन्दा करने का एक व्यापक राजनैतिक षड्‌यन्त्र चलाया जा रहा है जिसमें विश्व-चर्च और

'पैन—इस्लामिक संगठन' पूर्णतया सक्रिय हैं।

मनु-विरोध की प्रक्रिया में डॉ० अम्बेडकर सबसे अधिक चर्चित एवं अग्रणी हैं। जन्मना जाति-व्यवस्था व उससे जुड़ी जातिभेद, छुआछूत, जाँच-पाँत की खाई से जो आक्रोश उनके मन में पैदा हुआ, वह सर्वथा उचित था। निस्सन्देह जन्मना जाति-व्यवस्था अमानवीय, अनुसूचित और समाज-विघटनकारी है। इसीलिए महावीर स्वामी और महात्मा बुद्ध से लेकर अनेक सन्तों और राष्ट्रभक्तों ने इसे मिटाने का भरसक प्रयास किया। मगर डॉ० अम्बेडकर ने जातिभेद मिटाने का जो राजनीति से प्रेरित, नकारात्मक और समाज-विघटनकारी आन्दोलन छेड़ा, उसकी जड़ से मनु को जोड़ना सर्वथा अनुचित होगा, क्योंकि पहले तो डॉ० अम्बेडकर की संस्कृत एवं वैदिक वाङ्मय और हिन्दू शास्त्रों पर पकड़ न थी। उनके समस्त अध्ययन और लेखन का आधार हिन्दू धर्मशास्त्रों पर यूरोपीय मिशनरियों द्वारा अंग्रेजी में लिखित वह साहित्य था जो भारतीय संस्कृति के विकृतीकरण के उद्देश्य से तैयार किया गया था।

दूसरे, वे 'मनुस्मृति' एवं अन्य हिन्दू धर्मशास्त्रों में बाहरी मिलावट की प्रक्रिया जो पिछले पन्द्रह सौ वर्षों से चली आ रही है, उसके कारण मूल और प्रक्षिप्त श्लोकों में भेद न कर सके, या करना नहीं चाहते थे। हालाँकि 'मनुस्मृति' में मिलावट की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया था।

निस्सन्देह डॉ० अम्बेडकर ने न्यूयॉर्क में 9 मई, 1916 को भारत में जाति-प्रथा और 1936 में 'लाहौर जात-पाँत तोड़क मण्डल' के लिए जाति-उन्मूलन पर लिखे लेखन में गम्भीरता से विचार किया है। मनु तथा जाति-व्यवस्था-सम्बन्धी उनके मुख्य विचार इस प्रकार हैं—

1. एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूँ कि मनु ने जाति-विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था। जाति-प्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था। इसलिए उसने इसे एक दर्शन रूप दिया (जाति प्रथा पृ० 29, सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 1)।

2. जाति का आधारभूत सिद्धान्त वर्ण के आधारभूत सिद्धान्त के मूलरूप से भिन्न है, न केवल मूलरूप से भिन्न है, बल्कि मूलरूप से परस्पर-विरोधी है। पहला सिद्धान्त गुण पर आधारित है।....वर्ण-व्यवस्था

की स्थापना के लिए पहले जाति-प्रथा को समाप्त करना होगा (जाति-प्रथा उन्मूलन, पृ० 81, सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड 1)।

3. सामाजिक और वैयक्तिक कार्य-कुशलता के लिए आवश्यक है कि किसी व्यक्ति की क्षमता का इस बिन्दु तक विकास किया जाये कि वह अपनी जीविका का चुनाव स्वयं कर सके। जाति-प्रथा में इसका उल्लंघन होता है (जाति-प्रथा उन्मूलन, पृ० 66)।

4. वेद में वर्ण की धारणा का सारांश यह है कि व्यक्ति वह पेशा अपनाये जो उसकी स्वाभाविक योग्यता के लिए उपयुक्त हो (जाति-प्रथा उन्मूलन, पृ० 119)

5. मैं मानता हूँ कि स्वामी दयानन्द व कुछ अन्य लोगों ने वर्ण के वैदिक सिद्धान्त की जो व्याख्या की है, वह बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है। मैं यह व्याख्या नहीं मानता कि जन्म किसी व्यक्ति का समाज में स्थान निश्चित करने का निर्धारक तत्त्व हो। वह केवल योग्यता, को मान्यता देती है (जाति-प्रथा उन्मूलन, पृ० 119)।

6. कदाचित् मनु जाति के निर्माण के लिए जिम्मेदार न हो, परन्तु मनु ने वर्ण की पवित्रता का उपदेश किया है....वर्ण जाति की जननी है और इस अर्थ में मनु जाति-व्यवस्था का लेखक न भी हो, परन्तु उसका पूर्वज होने का उस पर निश्चित ही आरोप लगाया जा सकता है (हिन्दुत्व का दर्शन, सम्पूर्ण वाङ्मय, 6, पृ० 43)।

7. यह निर्विवाद है कि वेदों में चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त की रचना की है, जिसे पुरुष सूक्त के नाम से माना जाता है (हिन्दुत्व का दर्शन, पृ० 122)

अत: डॉ० अम्बेडकर मानते हैं कि 1. वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति वेदों से हुई है, 2. व्यक्ति अपनी स्वाभाविक योग्यतानुसार अपना पेशा अपनाये, 3. मनु वर्तमान जन्मना जाति-व्यवस्था का निर्माता नहीं है, 4. वर्ण-व्यवस्था जाति-व्यवस्था के विपरीत है, और 5. मनु ने वर्ण की पवित्रता पर बल दिया। अब समझने की बात यह है कि जब वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति वेदों से है तो मनु वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी नहीं है। उन्होंने उस व्यवस्था को पवित्रतम बनाये रखने पर बल दिया जो कोई अपराध

नहीं है, और जब मनु वर्तमान जन्मना जाति-व्यवस्था के निर्माता नहीं तो उसके लिए मनु को दोषी ठहराना कहाँ तक उचित है? यह अनुचित ही नहीं, अन्यायपूर्ण भी है। इस प्रकार मनु वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था दोनों के निर्माता के आरोप से मुक्त हो जाते हैं।

अब रहा मनु का 'जाति-व्यवस्था के पूर्वज' होने का आरोप। डॉ० साहब स्वयं जातिवाद के कट्टर विरोधी थे जो उनकी अध्यक्षता में संविधान सभा द्वारा रचित भारत के संविधान से सुस्पष्ट है, मगर उनके बाद के सांसदों ने संविधान में अब तक 80 संशोधन किये हैं तथा अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़ी जातियों को सरकारी नौकरियों तथा शिक्षा-संस्थाओं में जाति-आधारित आरक्षण और उससे जुड़ी अनेक धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं के लिए क्या डॉ० अम्बेडकर को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है? नहीं। क्या हम उनके धवल चरित्र और राष्ट्रीय निष्ठा पर जाति-द्वेष और जाति-आधारित सामाजिक विघटन के कलंक को उनके माथे पर थोप सकते हैं? नहीं। यदि आज का जाति-आधारित आरक्षण का स्वरूप आगे चलकर और भी अधिक बीभत्स, विघटनकारी, द्वेषपूर्ण और निष्कृष्ट हो जाये तो क्या उसके लिए डॉ० अम्बेडकर और उनकी संविधान सभा को दोषी ठहराया जायेगा, क्योंकि उन्होंने तो आज की जातिगत राजनीति से प्रेरित व्यवस्था को मान्यता नहीं दी थी? यह तो राजनैतिक विकृतीकरण है। इसी प्रकार वर्तमान जन्मना जाति-व्यवस्था, मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था से विरोधी व्यवस्था है जोकि हिन्दू धर्म की महानतम विकृति है। साथ ही जब डॉ० अम्बेडकर मानते हैं कि "अकेला मनु न तो जाति-व्यवस्था को बना सकता है और न लागू कर सकता था।" (मनु का विरोध क्यों? सुरेन्द्रकुमार, पृ० 20) तो फिर हिन्दू समाज में कालान्तर में हुए इस विकृतीकरण के लिए भला मनु कैसे उत्तरदायी हो सकते हैं? वे तो वर्ण-व्यवस्था को सख्ती से पालन करने-करवाने के पक्षधर थे, जिसे अम्बेडकर ने भी माना है।

इसके अलावा डॉ० अम्बेडकर कहते हैं कि "यदि आप जातिप्रथा में दरार डालना चाहते हैं तो इसके लिए आपको हर हालत में वेदों में और शास्त्रों में डाइनामाइट लगाना होगा (जाति-प्रथा उन्मूलन, पृ० 99)। एक

तरफ वे मानते हैं कि वेदों में जो वर्ण-व्यवस्था है, वह गुण-कर्म-आधारित होने से बुद्धिमत्तापूर्ण है।

फिर वेदों को डायनामाइट क्यों? क्या यह परस्पर-विरोधी कथन नहीं? साथ ही वे धर्मशास्त्रों को त्यागने की बात करते हैं, परन्तु उन्होंने हिन्दू धर्मशास्त्रों को त्यागकर बौद्ध शास्त्रों को प्रामाणिक माना है। लेकिन बौद्ध होने पर भी उन्होंने बौद्ध धर्मशास्त्रों की अवज्ञा की, क्योंकि महात्मा बुद्ध ने स्वयं वेदों की प्रशंसा की है और धर्म में वेदों की सराहना की है। जैसे—**विद्वा च वेदेहि समेच्च धम्मम्। न उच्चावचं गच्छति भूरि पञ्ञो।** (सुत्तनिपात 292) यानी महात्मा बुद्ध कहते हैं कि "जो विद्वान् वेदों से धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है वह भी विचलित नहीं होता है।" इसी प्रकार पुनः "वेद को जाननेवाला विद्वान् इस संसार में जन्म और मृत्यु की आसक्ति का त्याग करके और इच्छा, तृष्णा तथा पाप से रहित होकर जन्म-मृत्यु से छूट जाता है (सुत्तनिपात 1060)।"

डॉ० अम्बेडकर के हिन्दुत्वदर्शन और मनुस्मृति के गम्भीर अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उनका मनु-विरोध मुख्यतः मनुस्मृति के वर्तमान संस्कारों में मिलावटी श्लोकों के कारण है। डॉ० सुरेन्द्रकुमार ने 1981 में सात प्रामाणिक मापदण्डों के आधार पर इन मिलावटी श्लोकों को निकालकर 'विशुद्ध मनुस्मृति' प्रकाशित की है। डॉ० अम्बेडकर ने अपने हिन्दुत्वदर्शन में 'मनुस्मृति' के जिन 112 श्लोकों का उद्धृत किया है, उनमें से डॉ० सुरेन्द्रकुमार के मापदण्डों के अनुसार 71 यानी लगभग 64 प्रतिशत श्लोक मिलावटी हैं और शेष 412 श्लोकों का भाष्य भी हिन्दू धर्मशास्त्रों की परम्परा से न केवल भिन्न है, बल्कि विपरीत भी है। हिन्दुत्व दर्शन में उद्धृत 'मनुस्मृति' के प्रक्षिप्त श्लोकों का अध्याय एवं मन्त्र-संख्यानुसार और कोष्ठ में हिन्दुत्व दर्शन की पृष्ठ-संख्या का विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

1. 93, 94, (96), 95, 96, 98, 99, 100 (97), 2. 36, 37, (52), 66 (55), 116 (64), 169, 170 (52), 3. 12, 13, (45), 4. 99 (64), 5. 39 (44), 6. 87, 88, 113, 123, (46), 112, 267, 268, 270, 271, 272, 276, 277 (47), 279, 280, 281, 282, 283, 359, 366, 374, (48), 375, 376, 377, 379, 380, 382, 383, 384, 385,

(49), 124, 125, 381, (40), 410, 418 (61), 7. 18 (64), 313 (97), 317, 323 (101), 8. 127, (55), 122 (61), 125, 129 (62), 3 (96) 35 (97) 123 (98), 81, 82, (100) 11. 126, 127, 128, 129, 130, (50), 198 (64) 35 (97)। कुल 71।

ये मिलावटी श्लोक मनु के वचन न होने के कारण मूल 'मनुस्मृति' एवं हिन्दू धर्म के अंग नहीं हैं। यदि उपर्युक्त श्लोकों को हिन्दुत्व दर्शन से निकाल दिया जाये और शेष 41 श्लोकों का निष्पक्ष दृष्टि से पुनर्मूल्यांकन किया जाये तो हमें मनु के यथार्थ को समझने में काफी सहायता मिलेगी।

वस्तुत: डॉ० अम्बेडकर मनु के विषय में पूर्वाग्रहों से ग्रस्त थे। उन्हीं के शब्दों में ''उन पर मनु का भूत सवार था और उनमें इतनी शक्ति न थी कि वे उसे उतार सके'' (मनु विरोध क्यों, सुरेन्द्रकुमार, पृ० 13)। जब सच्चाई यह है तो किसी तर्क, प्रमाण या व्याख्या का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। परन्तु इतना अवश्य है कि मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था का मूल उद्देश्य प्रत्येक मानव में प्रस्तुत मानवीय शक्तियों का विकास कर उसे अधोगति से उठाकर सर्वोच्च अवस्था तक, या ब्राह्मणत्व तक ले जाना है, जैसाकि स्वामी विवेकानन्द ने बार-बार कहा है।

यदि हम 'मनुस्मृति' के मिलावटी श्लोकों को अमान्य समझकर विशुद्ध मनुस्मृति को अपनायें और पूर्वाग्रहों से ग्रसित मनु-विरोध के कुप्रचार को बन्द कर दें, तो भले ही हम एक आदर्श वर्णहीन और वर्गहीन समाज की रचना न कर सकें, परन्तु कम से कम जातिभेद की खाई को काफी पाट सकते हैं तथा जन्मना जातिगत-जन्य जातपाँत के घृणा-द्वेष एवं वैमनस्य को विलीन जरूर कर सकते हैं तथा एक प्रभावी सामाजिक सौहार्द अवश्य पैदा कर सकते हैं, क्योंकि मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था का आज की अमानवीय, अधार्मिक, अप्रासंगिक जन्मना जाति-व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। अच्छा हो कि हम निष्पक्ष भाव से मनु के यथार्थ को समझें और पारस्परिक समता, ममता और मानवता के आधार पर सौहार्दपूर्ण विकासवादी समाज की पुनर्रचना करें।